International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Volume 01, No. 02, April - June, 2019, pp. 175-177

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणाः एक विश्लेषण

डॉ. निधि यादव*

परिचय

मानव अधिकार विश्व का सर्वाधिक ज्वलंत विषय है। यह एक व्यापक अवधारणा है जिसमें संपूर्ण मानव जाति निहित है। मानव के रूप में जन्म से ही मनुष्य मानवाधिकारों का हकदार हो जाता है। 24 अक्टूबर, 1945 को मानव अधिकारों की संरक्षक अंतर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ अंतर्राष्ट्रीय पटल पर एक नवीन विचार का सुत्रपात हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ के रूप में संगठित अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने यह स्वीकार किया कि देशमाल की सीमाओं से उठकर व्यक्ति के कुछ ऐसे अधिकार है जो उसे मानव प्राणी होने के कारण उपलब्ध है। इन्हीं अधिकारों को मानव अधिकारों की संज्ञा दी जाती है। संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य मानव अधिकारों के सम्मान में व्यावहारिक पालन को बढ़ावा देना है। संघ में चार्टर की प्रस्तावना में लिखा है ''हम संयुक्त राष्ट्र संघ के लोग मौलिक मानव अधिकारों, मानव गरिमा, महिलाओं व पुरुषों तथा छोटे व बड़े राष्ट्रों के समान अधिकारों में विश्वास व्यक्त करते हैं।''

चार्टर की धारा 55 व 56 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों ने प्रजाति, लिंग, भाषा तथा धर्म में भेदभाव के बिना किसी को मानव अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताओं को व्यवहार में लाने तथा उसके लिए सार्वभौमिक सम्मान प्रदान करने की प्रतिज्ञा की है। आयोग के प्रयासों से 10 दिसंबर 1948 को महासभा ने 'मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा' को स्वीकृति प्रदान की। यह घोषणा मानव अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय मापदंड प्रस्तुत करती है जिसमें 30 धाराएं हैं, धारा 1 से 21 तक नागरिक व राजनीतिक अधिकार है। घोषणा में सम्मिलित मानव अधिकारों की रक्षा तथा उनका परिचालन सुनिश्चित करने हेतु आयोग की सिफारिश पर महासभा ने 1966 में दो संविदाओं को स्वीकृति प्रदान की। यह संविदाएं सदस्य राष्ट्रों की सहमति के बाद 1976 में प्रभावी हो गई। घोषणा व संविदा में प्रमुख अंतर यह है कि संविदा में हस्ताक्षर करने के बाद सदस्य राष्ट्रों द्वारा इनको लागू करना अंतर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से बाध्यकारी हो जाता है।

मानवाधिकार आयोग ने अपना कार्य जनवरी, 1947 में श्रीमती फ्रैंकलिन डी. रूज्वेल्ट की अध्यक्षता में प्रारंभ किया। आयोग का प्रथम अधिवेशन फरवरी 1947 में, द्वितीय अधिवेशन दिसंबर 1947 में हुआ जिसके अंतर्गत मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का प्रारूप तैयार किया गया। सार्वजनिक घोषणा में विश्व के समस्त मानव को मानव मात्र होने के कारण बिना किसी जाति, धर्म, वर्ग, प्रजाति, स्थान, लिंग में भेद के यह अधिकार प्रदान किए गये ताकि मानव गरिमा व सम्मान के साथ बिना भेदभाव व भय के जीवनयापन कर सके।[2]

* सह आचार्य राजनीति विज्ञान, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान।

सार्वजनिक घोषणा में मानव को निम्न अधिकारों के बारे में कहा गया है कि – विश्व के सभी मानव व्यक्तियों की अन्तर्निहित स्वतंत्रता तथा गरिमा एवं अधिकारों के समान ही प्रत्येक व्यक्ति जाति, रंग, लिंग, धर्म, राजनीतिक या संपत्ति तथा अन्य प्रस्थिति के भेदभाव के बिना स्वतंत्र रूप से इन अधिकारों को प्राप्त करने का अधिकारी है।

मानवाधिकारों की उपादेयता

अधिकार मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएं है अधिकारों के बिना कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता है और उसके अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।[3]

लास्की के अनुसार ''अधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियां है जिनके बिना साधारणतः कोई मनुष्य अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता।'' अधिकार व्यक्ति की मांगे है तथा उसका वह हक है जिसे समाज, राज्य तथा कानून नैतिक मान्यता देते हैं तथा उसकी रक्षा करते हैं। अधिकार मानव के अस्तित्व के लिए तथा सामाजिक जीवन के लिए परम आवश्यक है अधिकार संबंधित किसी भी विचारधारा में तीन बातें पाई जाती है – अधिकार और कर्तव्य आपस में नजदीक से जुड़े हुए हैं।

प्रत्येक अधिकार को समाज द्वारा मान्यता दिए जाने की आवश्यकता होती है अर्थात अधिकार शून्य में नहीं होते।

अधिकार निस्वार्थ अभिलाषा है इससे सार्वजनिक रूप से लागू किया जा सकता है।

अधिकारों का वर्गीकरण

मनुष्य एक जटिल प्राणी है इसलिए उसका व्यक्तित्व जटिल है उसके विकास के विभिन्न आयाम है तदनरूप उसके अधिकार भी अनेकानेक है।

- **साधारण वर्गीकरण** – इस दृष्टि से समस्त अधिकारों को सामान्यतः दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है।
- **नैतिक अधिकार –** वह है जिसका स्त्रोत मूल्य या आदर्श है और इनका संबंध मानव के नैतिक आचरण से होता है।
- **वैधानिक अधिकार –** इनका स्त्रोत समाज एवं राज्य है इन अधिकारों का उल्लंघन कानून द्वारा दंडनीय होता है।

इन अधिकारों को पुनः निम्न दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है –

- **नागरिक अधिकार** – जो राज्य द्वारा अपने नागरिकों को प्रदान किए जाते हैं।
- **राजनीतिक अधिकार** – जो शासन में भाग लेने के उद्देश्य से प्राप्त होते हैं।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और भारतीय संविधान

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है जब 10 दिसंबर, 1948 को विश्व स्तर पर संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों की घोषणा हुई, उस समय स्वतंत्र भारत का संविधान निर्माणाधीन था। हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से पूरी तरह वाकिफ थे और अपने देश के नागरिकों के लिए ऐसे ही व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील थे। परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में अत्यंत महत्वपूर्ण मानव अधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में शामिल किया गया और इनकी रक्षा की जिम्मेदारी न्यायपालिका को सौंप कर इन्हें गारंटीकृत भी किया गया[6] तथा कतिपय इन महत्वपूर्ण मानव अधिकारों को नीति निदेशक तत्व के रूप में शामिल किया गया।

भारतीय संविधान में मानव अधिकारों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है संविधान की प्रस्तावना में 'हम भारत के लोग' शब्द का प्रयोग यह दर्शाता है कि भारत की संप्रभुता भारत की जनता में निहित है अर्थात् शासन की सर्वोच्च शक्ति भारत यह जनता के हाथ में है प्रत्येक व्यक्ति को न्याय, स्वतंत्रता, समानता, गरिमा, बंधुता आदि मानव अधिकारों को प्राप्त कराने वह निरंतर बढ़ाने का दृढ़ संकल्प व्यक्त किया गया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. पुखराज जैन : भारतीय शासन एवं राजनीति, पृष्ठ संख्या 26
2. डॉ. एस. के. मयूर : मानव अधिकार एवं अंतर्राष्ट्रीय विधि, सेंट्रल लॉ एजेंसी 2004, पृष्ठ संख्या 635
3. अशोक कुमार वर्मा : प्रारंभिक समाज एवं राजनीतिक ’’’, पृष्ठ संख्या 210
4. अशोक कुमार वर्मा : प्रारंभिक समाज एवं राजनीतिक ’’’, पृष्ठ संख्या 205
5. शिव भान सिंह : समाज दर्शन का परिचय, पृष्ठ संख्या 291
6. आर. पी. जोशी : मानव अधिकार और कर्तव्य, अभिनव प्रकाशन, अजमेर 2009

❑❑❑